ISSN 2454-5554
An International Peer Reviewed & Referred
SJIF 2017 : 4.93
INTERNATIONAL JOURNAL
OF EDUCATIONAL RESEARCH STUDIES
IJERS

# भारतीय संस्कृति का स्वरुप और इसकी प्रासंगिकता

**प्रो. गीता सिंह**

*निदेशक , सेंटर फॉर प्रोफेशनल डेवलपमेंट इन हायर एजुकेशन (सीपीडीएचई), यूजीसी-मानव संसाधन विकास केंद्र , दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110007*

***सारांश***

*आधुनिक दौर में जब संपूर्ण विश्व वैश्वीकरण की ओर बढ़ रहा है और संपूर्ण विश्व को एक रीति-रिवाज और नीति के साथ जोड़ने का प्रयास हो रहा है तब सबसे जरूरी यह हो जाता है कि हम अपनी हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता पर फिर से विचार करें। भारतीय संस्कृति अपनी प्राचीनता एवं कालजयता के कारण पूरे विश्व में सुप्रसिद्ध है। भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम' 'सत्यम शिवम सुंदरम' के महत्त्व आदर्शों के लिए जानी जाती है। भारतीय संस्कृति चराचर जगत के प्रति एकता और अभेदता का भाव अपने में समेटे हुए बहुसंस्कृति की ओर बढ़ रही है। भारत अपनी सांस्कृतिक विभिन्नता एवं एकता के कारण ही प्राकृतिक राष्ट्र बना हुआ है जिसके फलस्वरूप आंतरिक उर्जा और महाप्राण संदिग्ध रूप से विद्यमान है। हमारी संस्कृति में ग्रहण और त्याग का विशेष विवेक है जिससे हमारे राष्ट्रीय मूल एवं मान समय-समय पर और अधिक परिष्कृत होते रहते हैं। हम सर्वदा से विराट के उपासक रहे हैं जिसके कारण हमें वैश्विक चेतना और विश्व दृष्टि से भारतीय संस्कृति अनुप्राणित होती हुई प्रतीत होती है।*

***मुख्य बिंदुः*** *भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्य, सांस्कृतिक प्रासंगिकता*

## प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति है जो आज भी लोगों में जीवित है और अपने अस्तित्व की जीविता को बनाए हुए हैं। मनुष्य कितनी भी तरक्की क्यों ना कर ले, चाहे जितनी बड़ी अर्थव्यवस्था स्थापित कर ले, चाहे जितनी मशीनें बना ले, विज्ञान में ही क्यों ना अग्रणी हो जाए लेकिन अपनी संस्कृति से विच्छेद होने पर पुनः पशु के समान हो जाएंगे (वर्मा, 2021)। इसलिए मनुष्य को अपनी संस्कृति से जुड़े रहना उसका प्रथम कर्तव्य होना चाहिए और अपने संस्कृति को बनाए रखने में अपना योगदान देना चाहिए। मनुष्य जितना अधिक सामाजिक होता है उतना अधिक वह अपनी संस्कृति से परिचित होता है। इसी प्रकार जैसे-जैसे हम विश्व से जुड़ते जा रहे हैं उतने अधिक वैश्विक होते जा रहे हैं और अधिक वैश्विक स्तर पर व्यापक तरीके से जीवन यापन कर रहे हैं, दूसरे देशों की संस्कृति के साथ जुड़ने से पहले यह आवश्यक है कि हमें पहले अपनी संस्कृति का व्यापक और पूर्ण ज्ञान हो। आधुनिक दौर में जब संपूर्ण विश्व वैश्वीकरण

की ओर बढ़ रहा है और संपूर्ण विश्व को एक रीति-रिवाज और नीति के साथ जोड़ने का प्रयास हो रहा है तब सबसे जरूरी यह हो जाता है कि हम अपनी हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता पर फिर से विचार करें। भारतीय संस्कृति अपनी प्राचीनता एवं कालजयता के कारण पूरे विश्व में सुप्रसिद्ध है। भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम' 'सत्यम शिवम सुंदरम' के महत्त्व आदर्शों के लिए जानी जाती है। हम जितनी तेजी से वैश्वीकरण की ओर बढ़ रहे हैं उतनी ही तीव्रता से हमें भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता पर भी विचार करना चाहिए। भारतीय संस्कृति चराचर जगत के प्रति एकता और अभेदता का भाव अपने में समेटे हुए बहुसंस्कृति की ओर बढ़ रही है। बहुसांस्कृतिक समाज को एक सूत्र में संगठित करने और पिरोने का कार्य भारतीय समाज बखूबी ढ़ंग से अपने संस्कृति के माध्यम से करता है। भारतीय संसद के मुख्य द्वार पर "अयं निज: परोवेति गणना लघुचेतसां, उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुंबकं" अंकित है अर्थात् यह मेरा है और वह तेरा है ऐसा संकुचित हृदय वाले ही सोच सकते हैं जिसका विशाल चित् है उसके लिए तो सारा विश्व ही एक परिवार के समान है। इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में एवं जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया है (उपाध्याय, 2018)। संक्षेप में कहा जाए तो भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए सांस्कृतिक एकता का आधार अनिवार्य है और सांस्कृतिक एकता का सबसे दृढ़ एवं स्थाई आधार- भाषा एवं साहित्य है।

विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी माने जाने वाली भारतीय संस्कृति सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध है। जीवन जीने की कला, विज्ञान या राजनीति का क्षेत्र हो भारतीय संस्कृति का प्रत्येक क्षेत्र में सदैव ही विशेष स्थान रहा है। विश्व के अन्य देशों की संस्कृतियाँ समय के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं परन्तु भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है। दार्शनिक मैक्स मुल्लर ने भारतीय मनीषियों के वैज्ञानिक चिंतन से मंत्रमुग्ध होकर कहा था कि 'आप अपने विशेष अध्ययन के लिए मनुष्य की सोच से सम्बंधित किसी भी विषय का चयन कर लें, चाहे वह भाषा, धर्म या पौराणिक कथाओं या दर्शन का विषय हो, चाहे वह कानून या रीति-रिवाज, प्राचीन कला या प्राचीन विज्ञान हो, हर क्षेत्र के ज्ञान के लिए आपको भारत जाना है, कोई इसे माने या न माने लेकिन मानव के इतिहास में सबसे अधिक मूल्यवान और सबसे शिक्षाप्रद सामग्री में से कुछ सिर्फ और सिर्फ भारत में ही उपलब्ध है (मिश्र, 2016)। वर्तमान समय में जब सम्पूर्ण विश्व मूल्यहीनता और भयावह अनास्था का शिकार हो रहा है तब भारतीय संस्कृति के स्वरूपों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है (उपाध्याय, 2018)। ऐसे समय में भारतीय संस्कृति के स्वरूपों और इसकी प्रासंगिकता पर खुला विमर्श किया जाना चाहिए तथा इसके सर्वोत्तम पक्षों को विश्व पटल पर मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। भारतीय संस्कृति सरिता की तरह सतत प्रवाहमान और विकासशील है जिसका प्रमुख गुण विलेयता और ग्रहणशीलता है। युग-युग

तक उसका स्वभाव जीवंत है। कट्टरता, रूढ़िवादिता, जड़ता या गतिहीनता विकृत है जब किसी संस्कृति में यह विकृति आ जाती है तब उसका पतन और विलोप होना प्रारंभ होता है, अतः सभी मनुष्यों को इसके संरक्षण हेतु कार्य करना चाहिए। इसके लिए भारतीय संस्कृति में निहित मूल्यों को अपनाना आवश्यक है।

संस्कृति का निर्माण

किसी देश की सम्पूर्ण मानसिक निधि उस देश की संस्कृति का सूचक है। संस्कृति किसी खास या एक व्यक्ति के परिश्रम का पारितोषिक नहीं है वरन् असंख्य अज्ञात तथा ज्ञात व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्नों का परिणाम है। संस्कृति के निर्माण में सभी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार सहयोग देते हैं। मनुष्य भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहते हुए विभिन्न प्रकार के सामाजिक वातावरण, प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धर्म, दर्शन, लिपि तथा भाषाओं का विकास करके अपने तथा अपने समाज के लिए एक परंपरा का निर्माण करते हैं। इस परंपरा का निर्वहन पीढ़ी दर पीढ़ी हजारों वर्षों तक निरंतर चलता रहता है। इस प्रकार मनुष्य अपने तथा अपने समाज के लिए विशिष्ट संस्कृति का निर्माण करते हैं।

भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता

भारतीय संस्कृति अपने मूल्यों के लिए जानी जाती है और इसके मूल्य ही इसकी प्रांसगिकता को आज तक जीवित किये हुए हैं। भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है-

1. **पुरुषार्थ** - भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को मानव जीवन के लिए प्रमुख माना गया है। प्रथम पुरुषार्थ धर्म तीन अन्य पुरुषों का नियामक माना जाता है। मनुष्य धर्म का पालन करते हुए धन का उपार्जन करता है और धर्म सम्मत काम का सेवन करते हुए उसे सांसारिक मोह माया और आवागमन से छुटकारा मिलता है। मोक्ष वैयक्तिक और पारिवारिक मुक्ति प्रदान करता है। मोक्ष आत्म मुक्ति ही नहीं विश्व मुक्ति का भी नाम है अर्थात् मोक्ष परम पुरुषार्थ है (उपाध्याय, 2018; मिश्र, 2010)। पुरुषार्थ सार्थक जीवन शक्ति का द्योतक है जो मनुष्य को सभी सांसारिक सुखों को भोगते हुए अपने धर्म का पालन करते हुए मोक्ष प्राप्ति हेतु मार्ग प्रशस्त करता है (सिंह, 2018)।
2. **विश्व मंगल बोध या विश्वबंधुत्व** - भारत का लक्ष्य सदैव विश्व कल्याण रहा है। उसने विश्व को एक परिवार के रूप में स्वीकार किया है और सबके सुख, स्वास्थ्य और कल्याण की कामना का प्रयास किया है।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मां कश्चित् दुख भाग भवेत्"।।

भारतीय संस्कृति कभी भी व्यक्ति जाति या देश की चहारदीवारी से बंधी हुई नहीं है अपितु वह समस्त प्राणी जगत के उत्थान का प्रयास करती है। राष्ट्रीय प्रगति हेतु वह सदैव सभी के कल्याण हेतु अग्रसर रहती है (मिश्रा, 2014)। प्रकृति ने जब किसी में भेदभाव नही किया तो मनुष्य को भी चाहिए की वह आपसी भेदभाव न करे और बंधुत्व की भावना को जागृत करे (राय एवं सिंह, 2016)।

3. **धर्मप्राणता या सहिष्णुता** - भारतीय संस्कृति का प्राण धर्म को माना जाता है। मानव जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म को प्रमुख स्थान प्राप्त है। यह अर्थ और काम का नियामक बन कर मोक्ष हेतु मार्ग प्रशस्त करता है। भारत में धर्म अविरोध और सौमनस्य का जनक माना जाता है। धार्मिक सहिष्णुता भारत का चिर आदर्श माना गया है। भारतीय संस्कृति में साम्प्रदायिकता का कोई स्थान नहीं है। महाकवि इकबाल ने भी कहा है, 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना'। भारत में जितनी भी महान क्रांतियां हुई है और जितने भी महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुए हैं, उन सब के मूल में आध्यात्म और धर्म ही रहे हैं। भारत के स्वाधीनता संग्राम के पुरोधा माने जाने वाले लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी भी मूलतः आध्यात्मिक पुरुष ही थे न कि राजनेता (शर्मा, 2018)।

4. **समन्वयशीलता**- व्यष्टि और समष्टि के संपूर्ण और सर्वांगीण विकास के लिए भारतीय संस्कृति ने समन्वय का मार्ग चुना है। समन्वय की विराट चेष्टा ही भारतीय संस्कृत का प्रमुख गुण है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का विलक्षण समन्वय, धार्मिक संबंध में सांस्कृतिक समन्वय, व्यष्टि और समष्टि का समन्वय, संतत्व और शूरतत्व का समन्वय भारतीय संस्कृति का द्योतक है।

5. **युग-अनुरूपता या चिरस्थिरता**- युग अनुरूपता भारतीय संस्कृति की मौलिक और महान विशेषताओं में से एक है। भारतीय संस्कृति युग की आशा, आकांक्षाओं, विश्वासों एवं मान्यताओं के अनुरूप स्वयं को सदैव ढ़ाल लेती है किंतु अपने महत्व और मूल्य को बनाए रखती है और इन्हीं कारणों से भारतीय संस्कृति का महत्व सदैव बना रहता है। भारतीय संस्कृति में बहिरंग के परिवर्तन और अंतरंग के संरक्षण की शक्ति निहित है। इसलिए भारतीय संस्कृति के आलोक में नवयुग का आख्यान और भी जीवंत तथा मूल्यवान प्रतीत होने लगता है। शंकराचार्य के समय जो संस्कृति निवृत्ति का राग अलाप रही थी, वही विवेकानंद और तिलक के समय प्रवृत्ति शंखनाद कर उठी अर्थात् यह कहा जा सकता है कि संस्कृति अपनी मूल्य को सदैव समय और महत्ता के अनुरूप ढ़ालने का कार्य करती है।

6. **अनेकता में एकता** - भारतीय संस्कृति विभिन्न प्रकार के धर्म, भाषा एवं रहन-सहन को अपने में समाहित किया हुआ है जो भारतीय संस्कृति का प्रमुख श्रृंगार है। यहां अनेकता को संघर्ष का नहीं सौमनस्य की जननी माना जाता है। भारतीय संस्कृति सहिष्णुता की नहीं बल्कि वैचारिक और व्यवहारगत उदारता की भी परिचायक है। भारत अनेकान्तवाद की भूमि है अर्थात् जो दूसरे के मतों को भी आदर से देखता

और समझता है। सर हर्बर्ट रिजले ने कहा है कि भारत की मौलिक एकता के फलस्वरूप हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक इस देश का जनजीवन एक सूत्र में बंधा हुआ है (मिश्रा, 2014)।

7. **सतत प्रवहमानता और ग्रहणशीलता**- भारतीय संस्कृति सतत प्रवहमान और ग्रहणशीलता को अपने में शामिल किए हुए हैं। यह अवरोधों से रुकती नहीं है, प्रतिकूलताएँ इसके मार्ग को मोड़ नहीं सकती क्योंकि भारतीय संस्कृति का प्रमुख तत्व यह है कि जहां कहीं से जो कुछ भी जीवन उपयोगी मिला हमने उसे सहर्ष ग्रहण किया और आवश्यकता पड़ने पर अपना कोष दूसरों के साथ मुक्त हस्त से वितरित किया। "चरैवेति, चरैवेति चलते ही रहो, निरंतर आगे बढ़ते रहो, गतिशीलता ही जीवन है" यही भारत का जागरण मंत्र है। दूसरों की यहां तक कि अपने विरोधियों की भी अच्छी बातों और सद्गुणों की मुक्त कंठ से सराहना करना, उन्हें अपनाना एवं दूसरों के स्वागत करने हेतु अपने विशाल हृदय के द्वार सदैव खुले रखना भारतीय संस्कृति का स्वभाव है।

8. **वर्णाश्रम व्यवस्था**- भारत में मनुष्य की सहजात योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें कार्य विभाजन किया गया जिसे वर्ण व्यवस्था का नाम दिया गया। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में समष्टि को पुरुष रूप में परिकल्पित किया गया है-

"ब्राह्मणोंऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत:
उरूतदस्य यद्वैश्य: पदत्याग शूद्रोऽजायत" ।।

समाज के व्यवस्थापक मनीषी-विधिवेत्ता न्यायाधीश, कवि, विचारक अध्यापक आदि ही उसके मुख या उत्तमांग सिर माने जाते हैं। समाज और राष्ट्र की रक्षा एवं व्यवस्था के लिए समृद्धि राजा, राजपुरुष, सैनिक, आरक्षक आदि भुजा कहे गए हैं। अन्न उत्पादक कृषक, उपभोक्ता वस्तु निर्माता एवं वितरक वैश्य की श्रेणी में रखे गए हैं। श्रमजीवी, शिल्पी, वास्तुकार आदि शूद्रों को इसके गतिशील चरण कहा गया है जो समाज को सतत गतिमान एवं उन्नतिशील बनाने में अपना योगदान देते हैं। यह व्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं अपितु कर्म पर आधारित थी ब्राह्मण भी शूद्रों के कार्यक्रम में रुचि रखने और दक्ष होने पर शुद्र बन जाते थे तथा शूद्र भी विद्या और चिंतन आदि के क्षेत्र में अग्रणी होने पर ब्राह्मण बन जाया करते थे (शर्मा, 2018)। मानव की शतायु अर्थात् 100 वर्ष की आयु वाला मानकर आश्रम व्यवस्था को स्थापित किया गया जिसमें प्रथम 25 वर्ष की अवस्था ब्रह्मचर्य अवस्था थी, जिसमें बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक ज्ञान की चर्या अर्थात विद्या अर्जन द्वारा अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया जाता था। 25 वर्ष से 50 वर्ष की अवस्था गृहस्थाश्रम थी जिसमें सृजनात्मक पुरुषार्थ से समाज को उन्नतिशील बनाकर अपने पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का निर्वहन किया जाता था। 50 से 75 वर्ष की अवस्था परिवार के दायित्वों से पूर्णत: मुक्त होकर समाज की ओर राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन और नेतृत्व करने की अवस्था थी, इसे वानप्रस्थ अवस्था

अथवा वानप्रस्थ आश्रम कहा जाता है। चौथा अर्थात् सन्यास आश्रम जिसमें मानव समाज और राष्ट्र के दायित्वों से पूरी तरह मुक्त होकर आत्ममुक्ति में संलग्न हो जाया करते थे किंतु यह आश्रम अनिवार्य न था वस्तुतः थोड़े से व्यक्ति ही सन्यासी होते थे। आत्ममुक्ति और विश्व कल्याण के लिए कुछ महामानव जैसे आदि शंकराचार्य की तरह ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे सन्यासी हो जाया करते थे (कुसुमाकर, 2016; जोशी, 2009)।

## मानव जीवन में संस्कृति का महत्त्व

संस्कृति कोई बाह्य वस्तु नहीं है, न ही कोई आभूषण है जिसे मानव अपनी इच्छानुसार उपयोग कर ले वरन् यह परम्पराओं, विश्वासों, जीवन शैली, आध्यात्मिक पक्ष तथा भौतिक पक्ष से निरंतर रूप से जुड़ी हुई है। संस्कृति मनुष्य को जीवन का अर्थ एवं जीवन जीने का तरीका सिखाती है। इस प्रकार मनुष्य संस्कृति का निर्माता है तथा संस्कृति मनुष्य को मनुष्य बनाती है।

## निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'सत्यं, शिवम्, सुन्दरं' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के चिन्तन पर आधारित होकर समाज का मार्गदर्शन करते हुए भारत को वास्तव में 'अतुल्य और अनुपम भारत' बनाती है। भारतवर्ष, संस्कृति का समृद्ध और संपन्न भण्डार है जो यहाँ की कला, साहित्यिक कृतियों, प्रथाओं, परम्पराओं, भाषाई अभिव्यक्तियों, कलाकृतियों, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक त्योंहरों के स्थलों इत्यादि में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित है कि भारत की इस सांस्कृतिक संपदा का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार, देश की उच्चतम एवं सर्वोत्तम प्राथमिकता होनी चाहिए क्योंकि यह देश की पहचान के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्वपूर्ण है। अतः सभी मनुष्यों एवं भारत के नागरिकों का प्रथम कर्तव्य है कि वह भारतीय संस्कृति को परिमार्जित करने का प्रयास करे और वर्षो से चली आ रहे सांस्कृतिक मूल्यों को बनाये रखने में अपना योगदान दे।

## संदर्भ

*उपाध्याय. के. एस. (2018). भारतीय संस्कृति की प्रांसगिकता, गगनांचल (सांस्कृतिक मंथन), 8-14. मार्च-अगस्त.*

*कुसुमाकर, ए. (2016). भारतीय संस्कृत के संरक्षण में शिक्षा की भूमिका, शब्द-ब्रह्मा. 4(9). 70-72.*

*जोशी, एस. (2009). भारतीय संस्कृति और शिक्षा, मूल्य विमर्श, 4(7). 22-25.*

*मिश्र, एच. (2016). प्राचीन ग्रंथों में वर्णित वैज्ञानिक सूत्र और आधुनिक विज्ञान, वैज्ञानिक (राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी विशेषांक). भाभा परमाणु अनुसन्धान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित. 3(4). 5-9. जुलाई-दिसंबर.*

*मिश्र, ए. (2010). पुरुषार्थ: एक पुनर्व्याख्या, मूल्य विमर्श, 4-8. जुलाई.*

*मिश्रा, यू. (2014). शिक्षा का समाजशास्त्र, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद. 36-54.*

*राय, एम. एवं सिंह, ए. (2016), अंतरराष्ट्रीय सदभावना के लिए शिक्षा, अधिगम, 24-31.*

*वर्मा, ए. के. (2021). भारतीय संस्कृति और नई शिक्षा नीति, स्कॉलरली रिसर्च जर्नल फॉर हुमैनिटी साइंस एंड इंग्लिश लैंग्वेज, 9(45). 11218-11222.*

*शर्मा, डी. (2018). भारत के सांस्कृतिक मूल्य. गगनांचल (सांस्कृतिक मंथन), 15-21. मार्च-अगस्त.*

*सिंह, एस. (2018). भारतीय जीवन का मूल मंत्र: पुरुषार्थ, मीडिया नवचिंतन, 13-22. जनवरी-मार्च.*

*https://rashtriyashiksha.com/national-education-policy-initiatives-for-promotion-of language-art-and-culture/*

*https://www.google.com/url?sa=t&rct=j&q=&esrc=s&source=web&cd=&ved=2ahUKEwjWotu31dz1AhVPmEKHalfAcEQFnoECC8QAQ&url=https%3A%2F%2Fwww.sieallahabad.org%2Fhrtadmin%2Fbook%2Fbook_file%2F4086061c14d455576e1ec631e0aa40d6.pdf&usg=AOvVaw3QqfYXh7yzAzF_QoSZ0ImP*